अध्याय - 2

साहित्य तथा राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना

अध्याय - 2

साहित्य तथा राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना

2·1 राष्ट्रीयता का स्वरूप :-

2·1·1 राष्ट्र शब्द और राष्ट्र की परिभाषा :-

राष्ट्र की चर्चा वास्तव में राजनीति का विषय है। वैसे तो साहित्य के लिए कोई विषय बाहय नहीं होता। अतः राष्ट्र शब्द की चर्चा साहित्य में भी प्राचीन काल से प्राप्त होती है।

राष्ट्र शब्द राज दीप्तौ धातु से बना है। "राजते दीप्यते प्रकाशते इति राष्ट्रम" अर्थात वह भूखण्ड जो स्वयं प्रकाशित हो जो विदेशियों के पादाक्रान्त न हो, सर्वतंत्र स्वतंत्र हो, वह राष्ट्र कहलाता है।[1] इस संदर्भ में महादेवी वर्माजी के शब्दों में, "सत्य तो यह है कि राष्ट्र शब्द भी हमे अपने वैदिक कालीन पूर्वजों से प्राप्त हुआ है, और उक्त संज्ञा के साथ जो प्राकृतिक परिवेश और उनमें अन्तर्निहित रागात्मक भावना है, वह भी परम्परागत उत्तराधिकार मानी जायेगी।[2] अथर्ववेद में रिपुदमन तथा राष्ट्र की समृध्दि-वर्धन हेतु की गयी प्रार्थनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

वामन शिवराम आपटेजी ने "राष्ट्र" शब्द को राज्य, देश, साम्राज्य आदि के अर्थो में ग्रहण किया है।[3] आज हम "राष्ट्र" शब्दको अंग्रेजी के "नेशन" शब्द का पर्यायवाची मानकर प्रयुक्त करते हैं। "नेशन" शब्द लैटिन भाषा के "नेशियों" शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है - जन्म या जाति।[4] "नेशन" शब्द का धीरे-धीरे विकास होते-होते आज का व्यापक अर्थ प्राप्त हुआ है। श्री अरविन्दजी की राष्ट्र की कल्पना इस प्रकार है, "भारत केवल एक भौगोलिक सत्ता मात्र नहीं

है, प्राकृतिक या भौतिक भूमि-खण्ड मात्र भी नहीं है और न ही केवल बुध्दि की कल्पना का विषय है, वह तो एक मूर्तिमती देवी, एक शक्तिमयी माता है।[5]

राष्ट्र का मस्तिष्क उसका समाज है। राष्ट्र की सीमाएँ उसका कलेवर है। डॉ· वासुदेव शरण अग्रवालजी के शब्दों में, "भूमि, भूमिवासी जन और जनसंस्कृति तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है।"[6]

राष्ट्र की परिभाषा :-

यहाँ पर राष्ट्र के संबंध में अनेक विद्वानों की परिभाषाओं द्वारा राष्ट्र को और अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया हैं। डॉ· सुधीन्द्रजी ने लिखा है, "भूमि, भूमिवासी जन और जन संस्कृति का समुच्चय "राष्ट्र" से है और "राष्ट्र" के उत्थान और प्रगति के संयोजन तत्वों का समीकरण राष्ट्र-धर्म है।"[7] डॉ·विनय मोहन शर्माजी के अनुसार , "राष्ट्र" जाति, धर्म एवं भाषा की एकता का नाम नहीं है, वह भावना की एकता का नाम है।'[8] संपूर्ण विवेचन के उपरांत निष्कर्ष निकलता है, राष्ट्र उस परिवर्तनशील परिधिका नाम है, जिसका अपना एक धरा खण्ड हो, जिसकी अपनी परम्परागत संस्कृति हो तथा उसी संस्कृति में आबध्द जनता उन्मुक्त वातावरण में अपनी उन्नति में स्वतंत्र हो।[9]

2·1·2 राष्ट्रीयता का स्वरूप तथा राष्ट्रीय चेतना :-

राष्ट्र के प्रति तीव्र अपनत्व तथा ममत्व की भावना में राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। प्रगत और अप्रगत राष्ट्रों के इतिहास से देखा जा सकता है कि इस भावना ने अपूर्व कार्य किया है। राष्ट्रीयता एक मानसिक अनुभूति अथवा मन की एक स्थिति है। राष्ट्रीयता के कारण ही जन्मभूमि को स्वर्गदीप गरीयसी मानकर एक भावनात्मक लगाव उसके प्रति रहता है। श्री·अरविन्दजी ने राष्ट्रीयता के स्वरूप में कहा है, "राष्ट्रीयता स्वयं परमात्मा से उद्‌भूत एक धर्म है।··· उसका दमन नहीं हो सका है और न हो सकेगा। राष्ट्रीयता ईश्वर की शक्ति में अमर होकर रहती है और उसका किसी भी शस्त्र से संहार संभव नहीं है। राष्ट्रीयता अमर है, क्योंकि वह मर्त्य मानव की सृष्टि नहीं है।"[10]

श्री· मैथिलीशरण गुप्तजी राष्ट्रीयता के बारे में लिखते हैं, "प्राचीन गौरव पर विश्वास और अभिमान, देश-प्रेम, संस्कृति का सुधार और स्वतंत्रता।"[11]

प्रत्येक राष्ट्र के साथ उसके अपने समाज का एक तादात्म्य संबंध होता है। व्यक्ति का परिवार के लिए, परिवार का समाज के लिए और समाज का राष्ट्र के हितों के लिए बलिदान करना क्रमशः राष्ट्रीयता के ही सोपान हैं। व्यक्ति का स्व से पर की ओर उन्मुख होना ही राष्ट्रीयता का प्रमुख सिध्दान्त है। विश्व बन्धुत्व या विश्व राष्ट्र की कल्पना राष्ट्रीयता की चरम सीमा है। जाति, भाषा, सामान्य स्वार्थ, धर्म और भौगोलिक समीपता राष्ट्रीय भावना को सदृढ बनाने में सहायक होते हैं।

राष्ट्रीय एकता के लिए राजनीति विशारदों ने कतिपय तत्वों की अनिवार्यता सिध्द की है। प्रत्येक तत्व की एक निजी विशेषता है जो मुख्य अथवा गौण रूप में राष्ट्रीय तत्व के लिए नितान्त सहायक होती है। ये तत्व हैं - भौगोलिक एकता, धार्मिक एकता, जातीय एकता, भाषिक एकता, धार्मिक एकता तथा आर्थिक एवं राजनीतिक तत्व। स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि, जन शक्ति, भूमि तथा संस्कृति की रक्षा व उन्नति की भावना राष्ट्रीय भावना कही जायेगी। कभी - कभी इस भावना के अंतर्गत जन, भूमि और संस्कृति तीनों की रक्षा की भावना संयुक्त रूप में उपस्थित हो सकती है।

2·1·3 राष्ट्रीय कविता :-

जन शक्ति के विकास या रक्षा के उद्देश्य से, चाहे संस्कृति की रक्षा और उन्नति के उद्देश्य से, चाहे भौगोलिक रक्षा और उन्नति के उद्देश्य से लिखा गया कोई भी काव्य राष्ट्रीय काव्य ही कहा जायेगा। राष्ट्र की विखण्डित शक्तियाँ राष्ट्र को संयुक्त करने के उद्देश्य से यदि संघर्ष करें तो यह संघर्ष भी विशुध्द राष्ट्रीय ही कहा जायेगा। डॉ·नगेन्द्रजी ने राष्ट्रीय कविता के संदर्भ में अपना मत व्यक्त किया है, "राष्ट्रीय कविता की मूल भावना देश भक्ति है। देश भक्ति में राग और उत्साह का सम्मिश्रण है। उत्साह उसके राष्ट्रीय स्वरूप का आधार है और राग उसके

मानवी सांस्कृतिक रूप का। रागात्मक संबंध का दूसरा रूप वह है जिसमें देश जड प्रतीक न रहकर सजीव एवं मूर्तिमंत हो जाता है।··· भारत की दिव्य मातृभूमि के शत-शत चित्र हमारी राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता की अमूल्य निधि है।[12]

भारतेन्दु युग से एक ऐसी राष्ट्रीय कविता का उदय हुआ जिसमें जन, जन-संस्कृति तथा भारत की भौगोलिक परिधि को विदेशी शासन से मुक्त कराने की सर्वांगपूर्ण राष्ट्रीय काव्य धारा प्रस्फुटित हुई जब कि इससे पूर्व की राष्ट्रीय कविता एकांगी कही जा सकती है।

2·1·4 भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास :-

साहित्य जातीय जीवन के उत्थान और पतन की प्रतिच्छाया है, और कविता में राष्ट्र की आत्मा उर्ध्वमुखी होती है। प्राचीन काल से ही भारत में राष्ट्रीयता की भावना किसी-न-किसी रूप में प्राप्त होती है। डॉ·राधा कुमुद मुकर्जी ने तो यहाँ तक लिखा है कि, "जब राष्ट्रीय विकास की अवस्थाओं का युरोप में अरूणोदय भी नहीं हुआ था, तब पुष्ट राष्ट्रवाद का संदेश भारत के सार्वजनिक जीवन में एक सजीव बल बन चुका था।"[13] भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के विकास को हम तीन भागों में विभाजित करेगें -

(अ) पुरातन युग ।

(आ) मध्य युग ।

(इ) आधुनिक युग ।

(अ) पुरातन युग में राष्ट्रीय चेतना :-

पुरातन युग में राष्ट्रीय चेतना संस्कृत साहित्य के द्वारा अभिव्यक्त हुई है। भारतीयों के परम पवित्र ग्रंथ वेदों में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। ऋग्वेद का स्वराज्य सूक्त राष्ट्र का एक सुन्दर व आदर्श चित्र प्रस्तुत करता है। अथर्ववेद में मातृभूमि के उपकारों से प्रेरित होकर प्रत्येक मनुष्य के हृदय में स्वदेश प्रेम के भावों को जाग्रत होना स्वाभाविक है - अर्थात् वह भूमि हमारे उत्तम राष्ट्र में तेज और बल धारण करे।[14] अथर्ववेद में भू-माता की प्रशस्ति करनेवाला

सुक्तकार स्वयं को पृथ्वी पुत्र कहने में गर्व का अनुभव करता है।[15] आज की भारत माता की कल्पना इसी पृथ्वी-सूक्त से ली है।

उपनिषद् काल तथा ब्राह्मण काल में भी राष्ट्रीय चेतना की झलक मिलती है। हमारी धार्मिक भावना राष्ट्रीय जीवन को सुदृढ बनाने के लिए सदा ही विकासोन्मुख रही है। जातीय एकता का संदेश देती हुई उपनिषद् की यह मार्मिक ध्वनि कितनी प्रभावोत्पादक है, "हम दोनों का साथ-साथ ही रक्षण, पोषण हो, संगठित शक्ति और विधा, तेजस्वी और महान हो तथा परस्पर विरोध में शक्ति क्षय न करें।"[16]

वस्तुतः उपनिषदों ने भारतीय दर्शन क्षेत्रों को अत्यन्त सम्पन्न बनाया, वैयक्तिक साधना का मार्ग उपलब्ध किया। वेद और उपनिषद् असंस्कृत विश्व के क्षितिज पर उषाकाल की रम्य प्रभा के समान व्याप्त है, जिनका सौन्दर्य आज भी अपूर्व-सा लगता है। हमारे देश ने ही समस्त विश्व को सदाचार का पाठ पढाया है। इस तरह निर्विवाद रूप से राष्ट्रीयता की प्रथम किरण भारतीय क्षितिज से ही विश्व भर में फैली।[17]

उपनिषदों के पश्चात् हमारे पवित्र ग्रंथ रामायण और महाभारत ने राष्ट्रीय एकता का जितना प्रचार और प्रसार किया, उतना शायद ही अन्य ग्रंथों ने किया है। रामायण और महाभारत जहाँ राष्ट्रीय भावना के प्रतीक हैं, वहाँ दोनों ही व्यक्ति, समाज व राष्ट्र की समस्याओं को लेकर आगे बढे हैं। तत्कालीन राष्ट्रीय भावनाओं का सुन्दरतम उदाहरण वाल्मीकि ने कितने सरस व लालित्य पूर्ण शब्दों में राम और लक्ष्मण के प्रतीकों के साथ सम्मुख रखा है। वैभव और ऐश्वर्य की सुवर्णमयी लंका भी राम का आकर्षण नहीं बन सकी और श्री राम को लक्ष्मण के सामने अपना राष्ट्र प्रेम व्यक्त करना पडा।[18] महाभारत भारत राष्ट्र की समस्याओं का एक ऐसा व्यूह था, जिसे कृष्ण सरीखे राजनीतिज्ञ भी बिना युध्द के न भेद सके।

रामायण में जहाँ विदेशी शासक अन्य राष्ट्र के स्वत्व का हरण करता है, वहाँ महाभारत आन्तरिक स्वत्व रक्षा के लिए रचा गया युध्द है। महाकवि

कालिदास के काव्य भी राष्ट्रीय भावना से अछूते नहीं है। "रघुवंश" में आपने राष्ट्र के आदर्श नायक राजाओं के जिन गुणों का वर्णन किया है, वह किसी भी राष्ट्र को गौरवान्वित करने के लिए पर्याप्त है। देश के संतों और वीरों ने देश की आम संस्कृति और परम्परा को लेकर एक राष्ट्रीय संगठन तीर्थ यात्राओं द्वारा करने का प्रयत्न किया है। जितना देश-प्रेम का भव्य वर्णन इस देश के संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है, उतना विश्व के उस युग के किसी साहित्य में मिलना दुर्लभ है।

आ) मध्य युग में राष्ट्रीय चेतना :-

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का बहता स्त्रोत आदिकाल से मिलता है। पृथ्वीराज रासो, हमीर रासो, बीसलदेव रासो, आल्हखंड में व्यापक एवं विशुध्द राष्ट्रीय भावना थी। वीरगाथा काल की राष्ट्रीय भावना पूर्णतया जातिगत या सामूहिक न होकर व्यक्तिगत अथवा सांप्रदायिक अधिक है। उसमें आदर्श एवं व्यापक राष्ट्रीय भावना का अभाव है। रासोमें राष्ट्र के लिए बलिदान की भावना का सुन्दर वर्णन है। इनका उद्देश्य राष्ट्रीय जीवन में प्राण संचार कर उसमें स्वातंत्र्य और बलिदान का मंत्र फूंकना है।[19]

आल्हखण्ड किसी भी रूप में राष्ट्रीयता से कम परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता। पूर्वजों के आदर्शों का, शक्ति और शौर्य का वर्णन सुन कायरों के हृदय में भी अनायास ही शक्ति का संचार होता है। राष्ट्र रक्षक क्षात्रिय जब तक स्वत्व रक्षा में प्राणोत्सर्ग नहीं करा देता, तब तक वह सफल क्षात्रिय नहीं कहलाता।[20] वीरगाथा कालीन राष्ट्रीय स्थिति में संत तथा भक्त कवियों के युग में परिवर्तन आ गया।

भक्तिकालीन कवियों ने राष्ट्रीय चेतना की एकता में महान योगदान दिया है। तुलसीदास, सूरदास, कबीर आदि ने राष्ट्रीय चेतना के लिए अपना योगदान भक्तिकाल में दिया था। तुलसीदास ने अपने काव्य के विविध प्रसंगों में राष्ट्रीय चेतना को व्यक्त किया है। राम, अंगद तथा सुग्रीव को अपनी जन्मभूमि के प्रति गौरव प्रकट करते हुए, सब वैकुण्ठ जैसा लगता है और वेद पुराण भी जग प्रसिध्द

है। सभी को अपनी भूमि प्रिय होनी चाहिए। यह जीवन कभी-कभी आता है।[21]

धर्म, जाति के समस्त भेदों को नष्टकर एक नये राष्ट्रीय संगठन की पृष्ठभूमि का निर्माण कबीर ने अपनी सधुकडी बानी में किया। कबीर इस बात का अनुभव कर रहे थे कि राष्ट्रीय संगठन के मूल में हिंदू-मुस्लिम एकता आवश्यक है। हिंदू कहता है मुझे राम प्यारा है, तुर्क कहता है मुझे रहिम प्यारा, ये दोनों आपस में लडे-लडे परंतु इनका मरण किसीने न जाना। कोई कहता है हिंदू, तो कोई तुर्क कहता है परंतु ये दोनों एक ही जमीन पर रहते हैं।[22] ऊँच नीच, छूत-छात सभी समस्याओं पर कबीर ने राष्ट्रीयता के सुन्दर सूत्र का निर्माण किया है। कबीर कहते हैं कि, तुम जात-पात किसी की न पूछो और जो तलवार है उसीका तुम मोल करो और म्यान को जमी पर ही रहने दो।[23]

महाराष्ट्र के सांस्कृतिक इतिहास में भगवान पंथ के कवियों का राष्ट्रीय चेतना का कार्य महत्वपूर्ण है। समर्थ रामदास राष्ट्रीय चेतना की जागृति करने वाले सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। कबीर, तुलसीदास, रामदास आदि संत कवियों ने जो भक्ति का एक व्यापक, सार्वजनिक रूप प्रशस्त किया, वह मूलतः देश के उदात्त चरित्र के उत्थान द्वारा अपनी राष्ट्रीय संस्कृति और समाज की रक्षा करने के उद्देश्य से ही किया था। उनकी यह भावना उनके युग की एक प्रकार से राष्ट्रीय भावना थी।[24]

रीतिकाल में राष्ट्रीय भावना का वैसा उभार दृष्टिगोचर नहीं होता, जैसा कि अन्य कालों में। रीतिकाल में भूषण राष्ट्रीय कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। मध्यकाल में महाराष्ट्र के रक्षक छत्रपति शिवाजी के उज्ज्वल चरित्र को महाकवि भूषण ने अपनी ओजस्वी लेखनी से गौरवान्वित किया । महाकवि भूषण शिवाजी की प्रशंसा उनके व्यक्तिगत वैभव के आधार पर नहीं करते, अपितु अपने काव्य में उन्होंने शिवाजी को राष्ट्र रक्षक के रूप में चित्रित किया है।[25]

भूषण के काव्य में यह राष्ट्रीयता की भावना मुख्यतया विदेशी शासकों के अत्याचार के प्रति विद्रोही भावना जाग्रत करने, हिंदू धर्म और हिंदू संस्कृति

के प्रति गौरव के चित्रण, हिंदू जनता की अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए प्रोत्साहित करने एवं शिवाजी जैसे वीर नायकों के गौरवगान में प्रस्फुटित हुई। आपके काव्य में राष्ट्र के उत्थान की भावना विद्यमान है।

(इ) आधुनिक युग में राष्ट्रीय चेतना :-

सन 1857 में स्वाधीनता आन्दोलन के बाद हिंदी साहित्य ने आधुनिक काल में प्रवेश किया। ब्रिटीश साम्राज्य भारत में पैर जमा रहा था। जैसे-जैसे अँग्रेजों का दमन चक्र चला, वैसे-वैसे राष्ट्रीय चेतना उभरने लगी और परम्परागत राष्ट्रीय भावनाओं ने विशाल रूप धारण किया। झाँसी से उठी सन 1857 की जन क्रांति की ज्वालाएँ देशभर में अंगारों के रूप में बिखर चुकी थी। राष्ट्रीय चेतना आधुनिक युग की राष्ट्रीयता का रूप लेकर भारतेन्दुद हरिश्चन्द्रजी के रूप में चमक उठी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी का सारा साहित्य राष्ट्रीय भावनाओं की धूरी पर ही घूम रहा है। आपके साहित्य में यद्यपि शासकों के प्रति प्रत्यक्ष रूप से विद्रोही भावनाएँ दृष्टिगोचर नहीं होती, परंतु क्रांति को जन्म देनेवाली देशभक्ति की भावनाएँ भारतेन्दुजी ने जन-जन के हृदय में भर दी। भारतेन्दुजी भारत की दुर्दशा देख नहीं सकते थे।[26]

भारतेन्दु कालीन कवियों ने तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक दुर्दशा के प्रति क्षोभ प्रकट करते हुए जिस यथार्थवादी शैली का प्रयोग किया है, वह आपकी हिंदी साहित्य को अपूर्व देन है। भारतेन्दु युग के कवि आर्थिक स्थिति के प्रति भी उदासीन नहीं रहें। आर्थिक शोषण के प्रति आक्रोश प्रकट करते हुए भारतेन्दुजी ने लिखा है, अंग्रेज लोगों को सब सुख है। उनका खान-पान सब भारी है। पर अपना धन सारा विदेश चला जाता है और यहाँ आर्थिक स्थिति बिकट होती है।[27]

बालमुकुन्द गुप्त ने समाज के आर्थिक वैषम्य का वर्णन करते हुए धनिक वर्ग को धिक्कारा है।[28] यह युग राष्ट्रीयता के जागरण का युग था। इस युग

के कवियों ने राष्ट्र प्रेम को जाग्रत करने का अवश्य प्रयत्न किया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी युग में आकर राष्ट्रीय चेतना ने अपेक्षाकृत स्पष्ट और सशक्त रूप धारण कर लिया। राजभक्ति से देशभक्ति की ओर जानेवाली द्विवेदी युगीन राष्ट्रीय कविता के अनेक रूप हैं। द्विवेदी युग में लोकतंत्रात्मक भावों की अभिव्यक्ति के द्वारा भारतीय प्रजा को अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति सचेत करने वाली कविताएँ भी उल्लेखनीय है। मैथिलीशरण गुप्तजी ने "जय भारत" काव्य में अत्याचारी शासन के जुल्म को उतार कर प्रजा का राज्य प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा दी है। राष्ट्रीयता के महान चिंतक गुप्तजी ने भूत वर्तमान और भविष्य तीनों कालों पर दृष्टि डाली हैं।[29]

माधव शुक्लजी ने वीरों के वंशधरों की वर्तमान दासता पर अपने विचार व्यक्त किया हैं। "मौर्य-विजय" में सियारामशरण गुप्तजी ने अतीतोत्कर्ष से वर्तमान दुर्दशा की तुलना करते हुए जनता के स्वाभिमान को झिंझोडने का प्रयत्न किया है। अन्धविश्वास, रूढियों और पाखण्ड में जकडे हुए भारतीय समाज की पतित अवस्था का उल्लेख करते हुए, जनता के उद्‌बोधन की भावना भी द्विवेदी युगीन काव्य में प्राप्त होती है।

भारतेन्दु युग में राष्ट्रीय चेतना का बीजारोपण हुआ था। द्विवेदी युग में राष्ट्रीय चेतना का समुचित विकास हो चुका था। इस युग के कवि वर्ग ने आशा और कर्म से युक्त राष्ट्रीयता की प्रेरणा दी। वस्तुतः अंग्रेजों की दमनकारी नीति की कठोरता के प्रतिक्रिया स्वरूप कवियों की राष्ट्रीय विचार धारा और भी सुदृढ होती गई। यही कारण है कि इस काल के काव्य में जागरण का स्पंदन है, सृजन और निर्माण की चेतना है। ओज, शक्ति और गति से पूर्ण यह काव्य परवर्ती युग की राष्ट्रीय चेतना के लिए सुदृढ आधार सिध्द हुआ।[30]

2·2 निराला के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना

निरालाजी के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप और विश्लेषण करना महत्वपूर्ण है। अपने समय की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय गतिविधियों से निरालाजी पूर्णतया परिचित ही नहीं वरन् प्रभावित भी थे, इतना ही नहीं, उसके निर्माण में निरालाजी का सक्रिय सहभाग भी रहा। निरालाजी की राष्ट्रीय चेतना अत्यन्त जागृत थी और वह कई रूपों में प्रस्फुटित भी हुई थी। आपकी राष्ट्रीयता के पीछे आपका अध्यात्मिक चिन्तन एवं स्वामी विवेकानन्द से आध्यात्मिकता, रामकृष्ण मिशन से अद्वैतवादी भावना तथा गांधी और तिलकजी से विद्रोह की खाद पाकर निरालाजी की राष्ट्रीयता अंकुरित और पल्लवित हुई थी।

निरालाजी की राष्ट्रीयता भारत को इस मिट्टी में उठाती, पनपती है, परन्तु इसमें प्रपुल्लित एवं पल्लवित होती हुई बहुत दूर जाकर वह समस्त मानवता को अपने में समेट लेती है। इसीलिए आपकी राष्ट्रीय कविता का धरातल बडा विस्तृत और बहुरंगी है। निरालाजी की राष्ट्रीयता राजनैतिक नेताओं की तरह नारेबाजी, दौड-धूप, तोड-फोड और पद-प्रभुता में व्याप्त नहीं हुई हैं। निरालाजी का कृतित्व ही राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत नहीं है, वरन् आपका व्यक्तित्व भी राष्ट्रीयता का जितना प्रभाव और प्रतिनिधित्व प्रकट करता है उतना शायद ही किसी वर्तमान कवि का।[31] डॉ·रामविलास शर्माजी ने आपके राष्ट्र प्रेम का गौरव भी किया है। आपके अनुसार, "निरालाजी में ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों के समन्वय का आधार है, आपका देश प्रेम।"[32]

निरालाजी की समस्त राष्ट्रीय चेतना का जातीय जीवन, जातीय संस्कृति एवं जातीय उत्थान से संबंध है। निरालाजी की राष्ट्रीय चेतना में एकांगी दृष्टिकोण का भ्रम होता है और आपकी राष्ट्रीय चेतना को प्रतिक्रियावादी एवं संकीर्ण माना जा सकता है।

संक्षेप में निरालाजी की राष्ट्रीय चेतना के निम्नलिखित रूप हैं -

(1) देश की तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दुर्दशा पर मानसिक क्षोभ।

13247

§2§ नारी की महानता और पवित्रता का चित्रण।

§3§ अतीत के सांस्कृतिक वैभव का गौरव-गान।

§4§ भविष्य के सुखी, स्वाधीन समाज का मधुर चित्र।

§5§ राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति अगाध निष्ठा।

2·2·1 देश की तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दुर्दशा पर मानसिक क्षोभ :-

निरालाजी ने देश की सामाजिक विभीषका और आर्थिक शोषण की मनोवृत्ति का कठोर व्यंग्यात्मक शैली में तिलमिला देने वाला हृदय द्रावक चित्र खींचा है। पद्य की अपेक्षा गद्य में आपका व्यंग्य अधिक खिल उठा है। निरालाजी की मान्यतानुसार समसामायिक सामाजिक परिपेक्ष्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या जातीय दंभ एवं भेद की नीति में निहित है। निरालाजी के अनुसार जातिवर्ग के दूषण एवं अभिजात्य वर्ग की अहंमान्यता को समाप्त करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है, जाति का रूचि एवं कर्मानुसार परिवर्तन।[33] "प्रभावती", "अलका", "अप्सरा", "काले कारनामे" उपन्यासों में जातीय विचार का दर्शन होता है। श्यामा, ज्योर्तिमयी, कमला, देवी, सुकुल की बीबी, चतुरी चमार आदि कहानियों में इस जातीय कनवजियापन के अभिजात्य दंभ का पर्दाफाश किया गया है। यह अभिजात्य ढंग ही सामाजिक शोषण का पर्याय है।

समाज की गिरी हुई अवस्था का सबसे सांगोपाग चित्र "तुलसीदास" में मिलता है। सांस्कृतिक विकास के नाम पर कपट, धोखा और छलना का साम्राज्य है, शांत बहते जल के रूप में निरालाजी ने इसका मार्मिक वर्णन किया है।[34] "कुकुरमुत्ता", "बेला", और "नये पत्ते" के व्यंग्य भी हृदय को तिलमिला देने वाले हैं। समाज की भर्त्सना एवं निंदा करके उसकी वास्तविकता को स्पष्ट करना निरालाजी अपना कर्तव्य समझते हैं। निरालाजी मनुष्य से कहते हैं कि तुम यहाँ मत आना, इस राज्य में दुःख ही दुःख है इस समाज मे शूर वीर को मान सम्मान नहीं मिलता। यहाँ मनुष्य का स्वार्थ परमार्थ से सदा दूर रहता है।[35]

देश की परतन्त्रता से आर्थिक परवशता, दैन्य और दु:ख की ही परिणति होती है। निरालाजी के अनुसार भारत की आर्थिक समस्या का मूलाधार ब्रिटिश साम्राज्यवाद देशी सामंतवाद, जमींदार वर्ग एवं किसान में निहित है। "अलका", "काले कारनामे" उपन्यासों में ऐसे गांवों का चित्रण है। "श्यामा", "चतुरी चमार", "अर्थ", "राजा साहब को ठेंगा दिखाया", "सफलता" जैसी कहानियों के माध्यम से निरालाजी समसामायिक आर्थिक शोषण की समस्या स्पष्ट करते हैं। निरालाजी काव्य में भी पूंजीपतियों के आर्थिक व्यवहार से संतुष्ट नहीं थे। आपने उनके हाथों होने वाले किसान और मजदूर लोगों की करुणापूर्वक वर्णन किया है।[36]

निरालाजी जनमानस में आर्थिक क्रांति लाना चाहते हैं। "बादल राग" के माध्यम से निरालाजी जिस क्रांति का आवाहन करते हैं, उसका उद्देश्य शोषित वर्ग किसान व श्रमिक को जगाना ही है, किसानों की मुक्ति में ही उसकी सार्थकता है। किसान के जीवन का दु:खपूर्ण वर्णन निरालाजी ने अपने शब्दों में किया है।[37]

2·2·2 नारी की महानता और पवित्रता का चित्रण :-

समाज के कर्णधार पुरूषोंने अपनी स्वार्थ भावना की परिपूर्ति के लिए स्त्रियों को अशिक्षित, भीरू, अधिकार विहीन एवं शोचनीय बना रखा है। निरालाजी ने नारी के "शक्ति" रूप की उपासना की। वह आपकी दृष्टि में अबला न रहकर सबला होकर समादृत हुई। नारी की दीनता, निराशा और असहायता का चित्रण करते हुए भी निरालाजी ने उसे प्रेरणा और शक्ति स्त्रोत के रूप में देखा है।

निरालाजी के उपन्यासों में भी नारी का चित्रण बडे मार्मिक रूप में किया है। "अप्सरा" की कनक, "निरूपमा" की निरूपमा, "अलका" की शोभा, "प्रभावती" की राजकुमारी, "चोटी की पकड" की रानीजी एवं "काले कारनामे" में मनोहर की माँ ऐसे स्त्री पात्र हैं जो पुरुष समाज के शोषण चक्र में पिसी जाती है। निरालाजी के सभी उपन्यासों में लज्जाशील किंतु साहस प्रधान नायिकाओं का प्रधानत्व है, जो उच्च वर्ग की स्त्रियों तक ही सीमित नहीं है, वरन उसका विकास एवं प्रसार

सामान्य वर्ग की स्त्रियों तक देखा है।

बंगाल में रहने कारण तथा राष्ट्रीय भावना की प्रेरणा स्वरूप निरालाजी का स्त्री विषयक समस्या की ओर झुकाव स्वाभाविक ही था। स्त्रियों के दु:खी जीवन एवं उनकी समस्याओं को लेकर निरालाजी ने कई कहानियाँ लिखी है। "लिली", "सखी", "सुकुल की बीबी" तथा "देवी" स्त्रीवाचक कहानियाँ हैं। मुख्यत: आपकी कथाओं का आधार भी स्त्रियाँ ही हैं।

समाज की संकीर्णता एवं अनुदारता से प्रभावित शुद्रों से भी हीन स्थिति नारी समाज की है। इस प्रकार का वर्णन निरालाजी ने अपने अनेक निबंधों में किया है। निरालाजी का नारी विषयक कथन है कि, प्राचीन शीर्णता ने नवीन भारती की शक्ति को मृत्यु की तरह ही घेर रखा है। घर की छोटी सी सीमा में बंधी हुई स्त्रियाँ आज अपने अधिकार, अपना गौरव, देश तथा समाज के प्रति अपना कर्तव्य, सब कुछ भूली हुई है।[38]

निरालाजी ने नारी महत्ता की अनेक कवितायें लिखी हैं। "तुलसीदास" में रत्नावली का जो चित्र उतारा गया है, वह नारी के अबलापन को, उसके वासनात्मक व्यक्ति को जला देने वाला है। "पंचवटी प्रसंग" में लक्ष्मण ने सीता की मातृत्वशक्ति को आत्मार्पण किया है।[39] "जुही की कली" के रूप में निरालाजी ने नारी के प्रेमी हृदय को पहचाना है।

2·2·3 <u>अतीत के सांस्कृतिक वैभव का गौरव-गान :-</u>

निरालाजी ने जहाँ वर्तमान की विभीषिका, और दुर्दशा का चित्रण किया है, वहाँ अतीत के उज्ज्वल वैभव की भी जानकारी दी है। रामकृष्ण मिशन के सम्पर्क से मिली हुई अद्वैत भावना कवि को विश्वसंस्कृति का चितेरा बना सकी। कवि अध्यात्मवाद से प्रभावित होकर भी सांसारिकता से विमुख नहीं है। आपके सामने लक्ष्मण का आदर्श है।[40] "यमुना के प्रति", "दिल्ली" और "खण्डकर के प्रति" में पुरातन वैभव के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उसे नवीन जीवन दिया। गुरू गोविन्द सिंह के शब्दों को उद्धृत कर "जागो फिर एक बार" में कवि ने

भारतीय संस्कृति की उत्सर्ग-भावना का चित्र खींचा है।[41] इसमें भारतीय संस्कृति का वर्णन बडे मार्मिक शब्दों में मिलता हैं।

"प्रभावती" और "चोटी की पकड" उपनन्यासों के माध्यम से निरालाजी अभिजात्य संस्कृति के प्रदर्शन, अहंमान्यता तथा सीमितीकरण की समस्या को स्पष्ट करते हैं। सांस्कृतिक विकास का वैयक्तिक एवं, सामाजिक स्वरूप स्व-विकास पर आधारित है। "कुल्लीभाट", "चतुरी चमार", "बिल्लेसुर बकरिहा" यह लोक संस्कृति के प्रामाणिक दस्तावेज है और उनकी सफलता स्पष्ट करके निरालाजी लोक-जीवन की संस्कृति के भविष्य बोध को स्पष्ट करते हैं।

निरालाजी के निबंधों में हमे सांस्कृतिक जागरण का पुट मिलता हैं। निरालाजी का निष्कर्ष है कि, सांस्कृतिक उत्थान के लिए जहाँ जाति में, जीवन में आदान-प्रदान की प्रक्रिया अनिवार्य है वहीं सांस्कृतिक अपरिवर्तन मृत्यु का लक्षण है और इस दृष्टि से वर्तमान सांस्कृतिक, परिवेश केवल मृत्यावस्था का पर्याय है।[42]

2·2·4 सुखी स्वाधीन समाज का मधुर चित्र :-

जीवन के अन्य क्षेत्रों के समान ही सामाजिक क्षेत्र में भी स्वतंत्रता के माध्यम से जिस परिवर्तन, विकासएवं उन्नयन की कल्पना एवं अभिलाषा निरालाजी ने की थी, वह खंडित हो गई। निरालाजी अंत तक संघर्षो में ही पलते रहे। आपको प्रत्यक्ष जीवन में भौतिक सुखों का आनन्द नहीं मिल सका। इसलिए आप कहते हैं कि, मेरा ज्ञान दिशा में जागा हैं, नवीन कवि ने मन में जन्म लिया है।[43] निरालाजी भविष्य के सामाजिक जीवन के लिए निराशा के स्वर में कह उठते हैं कि, अब मार्ग हैं पर आश्रय नहीं, आगे मरण निश्चित है परंतु सदा करना जय-विजय हो।[44]

2·2·5 राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति अगाध निष्ठा :-

राष्ट्रीय एकता के लिए भाषा की एकता का होना अनिवार्य नहीं तो आवश्यक शर्त है। निरालाजी को हिंदी भाषा प्रेम की प्रेरणा अपनी पत्नी मनोहरा देवी से प्राप्त हुई है। निरालाजी कहते हैं, "जीवित रहने

के लिए संसार के प्रत्येक कर्म चतुर मनुष्य और उसकी भाषा से हमें नाता नहीं तोडना है, तो हमें उसकी भाषा की प्रगति पर भी वही नजर रखनी चाहिए जो एक जौहरी हीरे पर रखता है।[45] सन 39 में गांधी और नेहरू जैसे महानेताओं के समक्ष भी आपने निर्भिकता पूर्वक हिंदी का समर्थन किया।

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के इन्दौर अधिवेशन में जब गांधीजी ने यह कह दिया कि, कौन हैं हिंदी में रविन्द्रनाथ, जगदीश चंद्र और प्रफुल्ल चन्द राय ?[46] निरालाजी ने इस पर गांधीजी से बहस भी की थी। निरालाजी ने अपनी मातृभाषा के बारे में गांधीजी से कहा, "बँगला मेरी वैसे ही मातृभाषा है, जैसी हिंदी।"[47] "पंडित जवाहरलाला नेहरूजी ने भी कहा था कि, "हिंदी में दरबारी ढंग की कविता प्रचलित है।"[48] तब निरालाजी ने कहा, "पंडित जी यह मामूली अफसोस की बात नहीं कि आप जैसे सुप्रसिध्द व्यक्ति इस प्रान्त में होते हुए भी इस प्रान्त की मुख्य भाषा हिंदी से प्रायः अनभिज्ञ है।"[49]

पर हिंदी का यह अन्य सेवक और दृढ समर्थक हिंदी सेवियों द्वारा ही उतनी उपेक्षा से देखा गया कि, जीवन के अंतिम दिनों में आपको हिंदी से चिढ़ हो गई और अंग्रेजी को ही अपनी बातचीत का माध्यम बनाकर आपने हिंदी और हिंदी भक्तों के प्रति आक्रोश प्रकट किया।

इस प्रकार निरालाजी की राष्ट्रीयता विधि परक है। उसमें विद्रोह है, उत्पीडन है पर निगति के लिए नहीं, प्रगति के लिए। राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति निरालाजी जितनी जागरूकता और सक्रीय सहयोग आपके किसी अन्य समकालीन साहित्यकार से नहीं सभव हुआ।[50] आपकी राष्ट्रीय चेतना एक अविकसित राष्ट्र और उसके दलित, दुःखी और पीडित निवासियों के प्रति सहानुभूति तथा उनके जीवन के नव-निर्माण से संबंध है। आपकी राष्ट्रीयता धार्मिक, साम्प्रादायिक अथवा जातीय संकीर्णता से कोई संबंध नहीं रखती।

2·3 संस्कृति का स्वरूप :-

2·3·1 संस्कृति अर्थ और परिभाषा :-

"संस्कृति" शब्द की रचना "सम्" उपसर्ग "कृ" धातु तथा "क्तिन" प्रत्यय से हुई है। अतः संस्कृति का अर्थ हैं वह दशा अथवा अवस्था जिसका संस्कार अथवा परिष्कार कर दिया गया है।[51] संस्कार तथा संस्कृति प्रायः समानार्थ वाचक है। डॉ·राम खेलावन पाण्डेयजी ने संस्कृति का अर्थ बताया है - "अलंकृत सम्यक कृति अथवा चेष्टा"[52] हिंदी में प्रचलित "संस्कृति" शब्द अंग्रेजी के "कल्चर" शब्द का पर्यायी है, "कल्चर" का विशुध्द पर्यायवाची वैदिक शब्द हैं कृष्टि। कृष्टि से तात्पर्य कृषि कर्म हैं। समस्त मानव कृतियाँ जिन्हे मानव ने सुधारकर नवीन रूप दिया है अथवा संस्कार करके उत्पन्न की है, संस्कृति के अंतर्गत मानी जाएगी।

"संस्कृति" शब्द समाज एवं व्यक्ति और बौध्दिक गतिविधियों का परिचय देता हैं। विभिन्न भारतीय तथा पाश्चात्य विचारकों ने संस्कृति के विषय में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं -

पंडित जवाहरलाल नेहरूजी ने संस्कृति की परिभाषा की है, "संस्कृति का अर्थ मनुष्य का भीतरी विकास और उसकी नैतिक उन्नति है, एक दूसरे के साथ सद्व्यवहार है और दूसरे को समझने की शक्ति है।"[53]

काका कालेलकरजी ने भी संस्कृति की परिभाषा की है, "हजारो लाखों वर्षो के पुरूषार्थ से मनुष्य जाति ने जो कुछ भी पाया है, वही उसकी संस्कृति है।"[54]
डॉ·हरिश्चंद्र वर्माजी लिखते है कि, "संस्कृति उन उदात्त विचारों और पवित्र कार्यो की शृंखला को कहते हैं जो किसी देश या जाति के जीवन को गतिप्रदान करती है।"[55] डॉ·देवराजजी के मतानुसार, "संस्कृति जीवन के महत्वपूर्ण एवं सार्थक रूपों की आत्मचेतना है।"[56] पाश्चात्य विचारक किबाल यंगजी ने भी संस्कृति की परिभाषा की है, "संस्कृति शब्द न्यूनाधिक रूप में उन आदतों, विचारों, अभिवृत्तियों और मूल्यों के उन संगठित और

सदृढ प्रतिमानों की ओर संकेत करता है, जिन्हें एक नवजात शिशु अपने से बडे लोगों अथवा स्वयं बडे होने पर अन्य व्यक्तियों से प्राप्त करता है।"[57]

एम·जे· हर्स कोवित्सजी का कथन है, "संस्कृति मानव व्यवहार का सीखा हुआ अंश है।"[58]

संस्कृति से ही मानव जीवन में सत्य, अहिंसा, प्रेम, परोपकार, उदारता,, निरभिमान एवं सहानुभूति आदि गुणों का विकास होता है, जिससे मानव स्वयं उन्नति के पथ पर अग्रसर होकर समाज को भी उन्नत कर सकता है। संस्कृति के द्वारा ही मानव अपने अतीत के गौरव और गरिमा को अक्षुण्ण रख सकता है।

2·3·2 संस्कृति और साहित्य :-

संस्कृति और साहित्य में अविच्छिन्न और अटूट संबंध है। संस्कृति के समान साहित्य भी समूचे मानव जीवन में परिव्याप्त है। साहित्यकार के व्यक्तित्व में उस संस्कृति की विशेषताएँ गुंथी हुई होती है। प्रत्येक देश का साहित्य तत्कालीन संस्कृति को प्रभावित कर उसे विकसित करता है। साहित्यकार अपने देश और काल की संस्कृति से प्रभावित होकर अपने ग्रंथ की रचना करता है। अतः साहित्य को संस्कृति की लिखित अभिव्यक्ति माना गया है, जो एक पीढी से दूसरी पीढी को अनायास प्राप्त होती रहती है।[59]

साहित्य और संस्कृति दोनों का लक्ष्य जीवन को अधिक सुन्दर और उदात्त बनाना है। जिस देश का साहित्य जितना महान होता है, उस देश की संस्कृति भी उतनी महान होती है। साहित्य संस्कृति की लिखित अभिव्यक्ति है और संस्कृति साहित्य की आन्तरिक अमूर्त प्रेरणा दायिनी शक्ति। साहित्य को संस्कृति का बाहय शरीर माना जाता है, तो संस्कृति को साहित्य की आत्मा। दोनों मानव जीवन की महान संपत्ति है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि साहित्य संस्कृति का संवाहक भी है और संवर्धक सम्पोषक भी। सांस्कृतिक धरोहर साहित्यिक कृतियों में व्यक्त होकर

अमरत्व ग्रहण करती है और साहित्य सांस्कृतिक सन्निवेश से सशक्त, समुन्नत, प्रभावकारी और दीर्घ जीवी बनता है।

2·3·3 भारतीय संस्कृति का क्रमिक विकास :-

संस्कृति कोई स्थिर वस्तु नहीं है, वह सतत विकासमान है। संस्कृति युगानुसार परिवर्तनों को आत्मसात करती हुई अबाध गति से प्रवहमान धारा है। भारतीय संस्कृति संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। भारतीय संस्कृति मानव की अनगिनत जातियों की देन है। भारतीय संस्कृति का क्रमिक विकास उसके लगभग पांच-छः हजार वर्षों के जीवन का जीता-जागता इतिहास है। आर्यों, बौध्दों, जैनों, मुसलमानों और अंग्रेजों ने भारतीय संस्कृति को अत्याधिक प्रभावित किया है। सिन्धु घाटी की संस्कृति से आज तक भारतीय संस्कृति के क्रमिक विकास को हम निम्नलिखित प्रमुख भागों में विभक्त कर सकते हैं -

(क) सिन्धु घाटी की संस्कृति।

(ख) वैदिक - हिंदू संस्कृति।

(ग) जैन और बौध्द धर्म प्रणीत संस्कृति।

(घ) इस्लामी संस्कृति।

(ड.) पश्चिमी युरोपीय संस्कृति।

(च) स्वातंत्र्योत्तर भारतीय संस्कृति।

(क) सिन्धु घाटी की संस्कृति :-

भारतवर्ष के इतिहास में सिन्धु घाटी की सभ्यता एवं संस्कृति सबसे अधिक प्राचीन है। वह नागरी सभ्यता के रूप में विश्व-विख्यात है। उसका काल आज से पांच हजार वर्ष पूर्व माना गया है। हरप्पा, मोहेन्जोदडों और नाल में इस सभ्यता के कुछ अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस संस्कृति की सर्व प्रमुख विशेषता यहाँ के नगरों का रचना कौशल ही था। स्वास्थ की दृष्टि से नगर में विभिन्न बातों का ध्यान रखा जाता था। यहाँ मार्ग और नालियाँ सुन्दर होती थी। इसकाल के निवासियों का सामाजिक जीवन बहुत सुखी और उन्नत था। यहाँ के लोगों का

धार्मिक जीवन अपना विशेष महत्व रखता है। यहाँ के धार्मिक संस्कारों का विकसित रूप ही हिंदू संस्कृति में पाया जाता है।

(ख) वैदिक - हिंदू संस्कृति :-

वैदिक संस्कृति का मूलाधार वेद साहित्य ही है। वेद हमारे प्राचीनतम धर्म ग्रंथ हैं तथा हिंदू धर्म के प्राण हैं। वेद की रक्षा सहस्त्रों वर्षो तक श्रोत्र परम्परा से हुई अतः वेद को "श्रुति" भी कहा जाता है।[60] चार वेद ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, समावेद संहिता और अथर्ववेद संहिता, उनके चार प्रमुख अंग संहिताएँ, ब्राहम्रण, आरण्यक और उपनिषद साहित्य वेद साहित्य कहलाता है। आर्य प्रणीत वेदों में जो विशाल समृध्द ज्ञान निहित है उसके आधार पर ही हम तत्कालीन संस्कृति को जो लगभग पांच हजार वर्ष की विरासत जान सकते हैं। वैदिक संस्कृति में सामाजिक व्यवस्था का मुख्य आधार परिवार था। कृषि, पशुपालन, व्यापार, शिकार, शस्त्र निर्माण तथा मछली पकडना आदि उपजीविता के प्रमुख साधन थे। भोजन में शाकाहार एवं मांसाहार दोनों प्रचलित थे। साथ ही वैदिक संस्कृति धर्म, दर्शन, समाज शास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, साहित्य, कला, विज्ञान आदि क्षेत्रों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

(ग) जैन और बौध्द धर्म प्रणीत संस्कृति :-

ईसा पूर्व छटी शताब्दी विश्व की एक महत्वपूर्ण शताब्दी है, जो समय की माँग के अनुसार सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक क्रांति की उद्‌गाता है। भारतीय संस्कृति को जैन और बौध्द धर्म ने तथा इनमें विशेष रूप से बौध्द धर्म ने अत्याधिक प्रभावित किया हैं। जैने धर्म के प्रवर्तक हैं भगवान वर्धमान महावीर और बौध्द धर्म के प्रवर्तक हैं गौतम बुध्द।

जैन धर्म भारत का पुरातन धर्म है। पार्श्वनाथ के पश्चात् जैन धर्म के अंतिम और चौबीसवे तीर्थकार वर्धमान महावीर हैं। आप जैन धर्म के संस्थापक नहीं हैं। आपने जैने धर्म का पुनरूध्दार कर समाज सुधार का प्रयास किया है। महावीरजो ने जैन धर्म का विशेष रूप से मगध, कलिंग, अंग, कौशल तथा मिथिला

में प्रचार किया। आपके धर्म के मुख्य सिध्दान्त सत्य, अहिंसा, अस्तेय , सन्यास एवं कठोर तप थे।

भारतीय संस्कृति को जैन धर्म की सबसे बडी देन अहिंसा है। भारतीय संस्कृति को जैन धर्म ने अपनी विशेष देन दी है; साहित्य के क्षेत्र में, दर्शन के क्षेत्र में, सामाजिक क्षेत्र में, कला के क्षेत्र में। जैन धर्म ने अपने धर्म प्रसार के लिए विभिन्न तथा कालों में प्रचलित प्राकृत आदि लोक भाषाओं का प्रयोग किया जिससे उनका अत्याधिक विकास हुआ।

गौतम बुध्द प्रणीत बौध्द धर्म न कोई स्वतंत्र धर्म है, न कोई स्वतंत्र पंथ। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में भारत में हुई सामाजिक और धार्मिक क्रांति का वह एक प्रतिफलन है। जैन धर्म की अपेक्षा बौध्द धर्म के सिध्दांत सरल थे तथा उन्हें देश में और विदेश में राज्याश्रय भी मिला। अतः बौध्द धर्म का भारत के अतिरिक्त चीन, जपान, तिब्बत, लंका, कोरिया, बर्मा आदि स्थानों में भी प्रचार और प्रसार हुआ। अशोक ने भारत और विदेशों में बौध्द धर्म के प्रसार में बहुत योग दिया।

बौध्द धर्म ने भारतीय संस्कृति को अत्याधिक प्रभावित किया है। देश में अहिंसा, सदाचार, लोकसेवा और त्याग की भावना का प्रसार हुआ। संसार की वास्तविकता को ध्यान में रखकर बुध्दजो ने अपने अनुभव के आधार पर अपने अनुयायियों को चार आर्य सत्यों का उपदेश किया था। ये चार सत्य हैं - 1· दुःख 2· दुःख समुदय 3· दुःख निरोध एवं 4· दुःख निरोध मार्ग। मानव जीवन को यथार्थवाद के रूप में स्वीकारने वाला बुध्दिप्रामाण्यवादी धर्म , बौध्द धर्म है। बौध्द धर्म ने भारतीय संस्कृति को बहुत कुछ दिया है, जो भारतीय संस्कृति की पावन-गंगा में एक नये प्रवाह के रूप में घुलमिल गया है। भारतीय संस्कृति के सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक आदि अंगों को प्रभावित तथा विकसित करने में बौध्द धर्म का महत्वपूर्ण योगदान है। बुध्दजी ने अपने उपदेशों को पाली भाषा में दिया है, जो उस समय की जन साधारण की भाषा थी।

(घ) इस्लामी संस्कृति :-

भारत में इस्लाम का प्रवेश प्रथमतः अरबवासियों के द्वारा व्यापार के जरिये शांतिपूर्वक हुआ। वास्तव में तत्कालीन हिंदू समाज की दुर्बलताएँ भी इस्लाम के भारत प्रवेश और प्रसार का कारण है। महमूद गजनवी (1000 ई.) के भारत पर आक्रमण करने के पश्चात यहाँ इस्लाम धर्म का प्रचार हुआ।

इस्लाम धर्म का मूल ग्रंथ है कुरान। इस्लाम धर्म के कुछ महत्वपूर्ण तत्व है 1. ला इलाह इल्लिलाह 2. ईमान 3. इबादते। मध्य युगीन काल में इस्लाम का भारत में प्रवेश हुआ। इतनी दीर्घ कालीन अवधि में दोनों ही संस्कृतियों में संन्निकर्ष, संघर्ष तथा साहचर्य जरूर हुआ है। लेकिन दोनों ही संस्कृतियों का आदान-प्रदान ऊपरी सतह तक ही सीमित रहा है। हिंदू धर्म और इस्लाम धर्म के अनेक सिध्दांत परस्पर विरोधी है।

भारत में अरबी, फारसी और ऊर्दू भाषा का प्रचलन इस्लाम के दीर्घकालीन वास्तव्य का प्रतिफलन है। इस्लामी संस्कृति ने सामाजिक जीवन में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। शताब्दियों तक मुसलमानों के सम्पर्क में आने के कारण हिंदू संस्कृति ने मुसलमानों के खान-पान, वेश-भूषा, अभिवादन, रीतिरीवाज तथा अनेक प्रथाओं को ग्रहण किया। मुस्लिम कला ने भी भारतीय कला को प्रभावित किया है। हिंदू और मुस्लिम कलाओं के समन्वय से एक तीसरी वास्तुकला उत्पन्न हो गई। इसका उदाहरण है, ताजमहल आदि स्मारक। मुगलकालीन संगीत की छाप हमारे संगीत पर कव्वाली, ठुमरी, गजल आदि के रूप में आज भी विद्यमान है। हिंदू-मुस्लिम संस्कृतियों में कुछ आदान-प्रदान जरूर हुआ है मगर वह संस्कृति का बाहय रूप ही है।

(ड.) पश्चिमी युरोपीय संस्कृति :-

भारतीयोंका पश्चिमी युरोपीय संस्कृति से संबंध उनकी गुण ग्राहकता, प्रगतिशीलता और समन्वयात्मक प्रवृत्ति का ही द्योतक है। आधुनिक काल

में 1498 ईसवी में पुर्तगाली नाविक वास्को दि गामा का भारत प्रवेश, भारत में पश्चिमी सम्पर्क का सूत्रपात है। 16 वी शताब्दी में अंग्रेजों ने भारत में "ईस्ट इण्डिया" की स्थापना से भारत में प्रवेश किया। व्यापार के साथ-साथ ही वे अपने धर्म का प्रचार भी करना चाहते थे।

हिंदू धर्म की रूढियों, बुराईयों और अन्धविश्वास और पाखण्ड को देखकर वे भारतीय जनता को ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट करने लगे। अंग्रेज अपने साथ भारत वर्ष में विज्ञान लाये थे। अंग्रेजों के संपर्क के कारण भारत में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से नयी शिक्षा का श्रीगणेशा हुआ। ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक भारत पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के पूरे संपर्क में आ गया और उसके प्रभाव के कारण ही हमारा देश आधुनिक भारत के रूप में परिवर्तित हुआ।

अंग्रेजी शासन-काल में अंग्रेजी शिक्षा और शिक्षा व्यवस्था का व्यापक प्रभाव भारतीयों पर पडा। पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव साहित्य के क्षेत्र में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। ब्रिटिश शासन काल में मुद्रणालय स्थापित किये गये। भारतीय भाषाओं में साहित्य का आधुनिक गद्य रूप पाश्चात्य शिक्षा और साहित्य के संपर्क की ही उपलब्धि है। अंग्रेजी सभ्यता के प्रभाव के कारण भारतीय दैनिक व्यवहार और रहन-सहन में बहुत परिवर्तन हुए। हिंदुओं की रीति-रिवाजों तथा परम्परायें भी बहुत अधिक प्रभावित हुई। भोजन के प्रकार, माता-पिता के नामोच्चरण वेशभूषा, शृंगार प्रसाधनों का प्रयोग तथा अभिवादन के ढंग आदि में अनेक परितर्वन हुए। भारतीयों का भौतिक जीवन अधिक सम्पन्न बनाने की दृष्टि से पश्चिमी सम्पर्क प्रेरणाप्रद और पथ प्रदर्शक रहा है।

(च) स्वातंत्र्योत्तर भारतीय संस्कृति :-

15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता अन्य देशों के लिए भी एक प्रयत्न प्रेरणा बन गई। भारतीय संस्कृति में भी एक नया अध्याय और जुड गया। स्वातंत्र्योत्तर भारत, भारत के सामाजिक संस्कृति का अद्यतन विकसनशील रूप है। पुरानी आस्थायें, आदर्श और सामाजिक संबंधों की

कडियाँ टूट रही हैं और नई आस्थायें, मर्यादा, आदर्श, सामाजिक संबंधों की शृंखलाएँ जुड रही हैं। जाति व्यवस्था को धीरे-धीरे नष्ट करने में आधुनिक शिक्षा, संविधानिक कानून व्यवस्था एवं विभिन्न व्यवसायों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

पारिवारिक जीवन में भारी परिवर्तन हुआ है। सम्मिलित परिवार का आकर्षण कम हो रहा है। इस देश में दहेज की प्रथा प्राचीन काल से ही रूढ हो गई थी और स्वातंत्र्योत्तर काल में वह अपनी चरमसीमा पर थी। लेकिन अब वह प्रथा कानून ने अवैध घोषित कर दी है। स्वातंत्र्योत्तर काल में नारी जागरण को भी अत्याधिक गति मिली है। सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, व्यावसायिक आदि तथा कला के क्षेत्र में नारी सम्मानित हुई है। सामाजिक संगठन में युवा-पिढी का महत्वपूर्ण स्थान है। आज का युवा संस्कृति समाज व्यवस्था के नियमों, विशेष रूप से उसकी रूढियों और कठिन परम्पराओं को, लोगों के परस्पर समीप आने के मार्ग में बाधा मानने लगती है।

स्वतंत्र भारत के संविधान में जातिगत, धर्मगत, वर्णगत किसी भी प्रकार का भेद नहीं है। आधुनिक दृष्टि में राष्ट्र एक ही संविधान, समान आर्थिक और राजनीतिक हितों तथा पारम्पारिक सांस्कृतिक मूल्यों की एकता से ही निर्मित होता है।[61]

भारतीय जनता आज भी राम, कृष्ण, शिव, विष्णु आदि को ही अपना आराध्यदेवता मानती है। गंगा और जमुना आज भी उसके जीवन को पवित्र करती है। रामकृष्ण, विवेकानन्द, दयानन्द, अरविन्द, गांधी और नेहरूजी की विचारधारा ही उसे सर्वाधिक प्रभावित करती है। अतः पाश्चात्य संस्कृति से अत्याधिक प्रभावित होते हुए भी भारत आज भी भारत ही है।[62] भारतीय संस्कृति में अध्यात्मिकता प्रधान है तथा पाश्चात्य भौतिकता प्रधान है। अतः वर्तमान भारतीय संस्कृति आज भी प्रमुख रूप से भारतीय ही है।

2·4 निराला के साहित्य में सांस्कृतिक चेतना :-

निरालाजी की विचारधारा और भाव-भूमि का विकास सांस्कृतिक भूमिका पर हुआ है। आप भारतीय संस्कृति को मूलतः हिंदू संस्कृति ही मानते हैं। निरालाजी के दिमाग में भारत परिकल्पना केवल एक भौगोलिक सीमा के रूप में ही नहीं है। भारत आपके लिए मुख्यतः एक सांस्कृतिक इकाई है।[63] शुध्द संस्कृति की आपकी धारणा बार-बार आप की कविताओं में इंकृत होती है। आपका काल सांस्कृतिक जागरण और राष्ट्रीय आन्दोलन का युग था और छायावादी साहित्य भी उसीका रूप है।

निरालाजी संस्कृति के महान गायक हैं। आपके काव्य में संस्कृति की अनायास झलक मात्र न होकर, सायास भव्य अवतारणा है। निरालाजी यह मानते थे कि किसी जाति का नैतिक पतन ही उसकी संस्कृति के पतन का प्रमुख कारण होता है। यही कारण है कि आपके काव्य में एक ओर जो अनैतिकता को प्रश्रय देने वाले तत्वों पर तीव्र व्यंग्य के दर्शन होते हैं और दूसरी ओर नैतिकता की स्थापना, रक्षण और पोषण करने वाले तत्वों के प्रति विशेष आग्रह भी दृष्टिगोचर होता है।

संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार की भावना से अनुप्राणित होने के कारण आपके काव्य में संस्कृति के विविध पक्ष अपने सहज और स्वाभाविक रूप में उतरते चले हैं। निरालाजी के साहित्य में सांस्कृतिक अध्ययन को महत्वपूर्ण बात मानी जायेगी। निरालाजी के साहित्य में सांस्कृति चेतना निम्नलिखित बातों से मालूम हो जायेगी-

1· अतीत कालीन संस्कृति का वर्णन।

2· वर्तमान संस्कृति का ह्रास ।

3· व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवन का वर्णन।

4· अध्यात्मिकता और दर्शन।

5· मानवता।

2·4·1 अतीत कालीन संस्कृति का वर्णन :-

निरालाजी अपने समय में परिव्याप्त अभिजात्य संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति का अन्य संस्कृति की प्रांतीय मान्यताओं का विश्लेषण करते हैं। "प्रभावती" तथा "चोटी की पकड" के माध्यम से निरालाजी अभिजात्य संस्कृति के प्रदर्शन, अहंमान्यता तथा सीमितीकरण की समस्या को स्पष्ट करते हैं। सांस्कृतिक वर्णन के जिस पथ को कथा-साहित्य में उद्घाटित किया गया है वह सांस्कृतिक असंतुलन एवं असामंजस्य है। जनजीवन की आस्था, विश्वास, अंधमान्यतायें, रीति-रिवाज तथा जीवन प्रणाली का स्वरूप यों तो आपके समस्त कथा साहित्य में प्रकट हुआ है।

निरालाजी वैदिक काल से अब तक की सांस्कृतिक चेतना में देवत्व तथा असुर भाव दोनों के सामंजस्य के पक्ष पाती है। निरालाजी के निबंधों में हमें सांस्कृतिक जागरण का पुट मिलता है। आप अपने निबंधों में उन्नीसवी शती के अध्येता की दृष्टि से सांस्कृतिक जागरण की आवश्यकता एवं भारतीय संस्कृति की आत्मा का संश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

"खण्डहर के प्रति" कविता में कवि की सांस्कृतिक भावधारा का परिचय प्राप्त होता है। अद्भूत, अज्ञान पुरातन का शृंगार धारण कर खडा खण्डहर मानो कवि को विस्मृति की नीन्द से जगाता है।[64] "दिल्ली" कविता में भी कवि ने अतीत की संस्कृति को चित्रित किया है। राम, कृष्ण, भीमार्जुन के प्राचीन देश की प्रार्थना करता हुआ कवि कहता है, भारत के सत्पुरूष जो प्राचीन काल से अपना आदर्श हमारे ऊपर बरस रहे हो, तो तुम्हारे चरणों में मेरा प्रणाम सदा रहेगा।[65] भारतीय इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं जब अपने शील एवं मान की रक्षा हेतु नारियों ने आत्म बलिदान किया। निरालाजी ने भी सती संयोगिता का ओजस्वी वर्णन किया है, सती संयोगिताने अपने आहुति से स्वजातीय को बलिदान दिया है।[66]

2·4·2 वर्तमान संस्कृति का -ह्रास :-

संस्कृतिका -ह्रास जन जीवन की गरिमा को नष्ट कर देता है। भारत के सांस्कृतिक वैभव के पराभव की समस्या निरालाजी के काव्य का प्रमुख चिंतनीय विषय है। निरालाजी पाश्चात्य संस्कृति की उन्मुक्तता एवं उच्छृंखलता को भी तत्कालीन समय की महत्वपूर्ण समस्या मानते हैं। "निरूपमा" और "अलका" में इसका चित्रण मिलता है। संस्कृति का पराभव का यह स्वरूप शोषण एवं दोहन पर आधारित है। "चतुरी चमार" में इसका वर्णन मिलता है।

"तुलसीदास" में निरालाजी ने भारत के अस्त प्रायः धर्म भास्कर का चित्रण किया है। भारत को मुसलमान शासन से जो संस्कृति मिली है उसके प्रति विद्रोह करते हैं। भारत के नभ में शांति छाया के रूप में भारतीय संस्कृति का सूर्य प्रकाशमान हो गया था।[67] नश्वर आकर्षण को ही सुख मानने वाले भारतवासियों के घोर पतन की यह पराकाष्ठा है कि, दुःख हर जगह फैला है। सुख का जाल केवल कल्पना से फैला है। अपने प्राणों की छाया मंद गति से देखता है।[68] पथ भ्रष्ठ देशवासियों के कर्तव्य ज्ञान को जगाने के लिए कवि की वाणी तीक्ष्ण व्यंग्य से युक्त हो गई है।

2·4·3 व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवन का वर्णन :-

व्यक्ति समाज की एक महत्वपूर्ण ईकाई है। निरालाजी समाज में परिव्याप्त अनेक विकृतियों और सुकृतियों के लिए व्यक्ति को ही जिम्मेदार मानते हैं। सांस्कृतिक विकास का वैयक्तिक एवं सामाजिक स्वरूप स्वविकास पर आधारित है। इसीलिए आप व्यक्तिगत जीवन की उच्चता पर बल देते हैं। कोई भी साधना मानव की मुक्ति के लिए होती है, बंधन के लिए नहीं। संसार को बंधनों से मुक्त होने के लिए निरालाजी व्यक्ति को ही आवाहन करते हैं।[69] सांसारिक विपदाओं के हजारों प्रहारों को अपने व्यक्तिगत जीवनपर झेलते हुए भी अपनी कविता की शक्ति से जीवन-धारा प्रवाहित करनेवाले कवि को ही आप "महाप्राण" मानते हैं।[70]

परिवार का रूप और व्यवहार संस्कृति द्वारा ही निर्धारित होता है। परिवार में पति-पत्नी तथा उनके बच्चों के अतिरिक्त अन्य संबंधी भी हो सकते हैं। निरालाजी ने "तुलसीदास" काव्य में कवि तुलसीदास के पारिवारिक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया हैं। यह सत्य है कि प्रेम के कारण ही प्रत्येक परिवार एक इकाई के रूप में बँधा है, किन्तु अगाध प्रेम को इस छोटे से घेरे में बांध देना उचित नहीं है।[71]

प्रत्येक समाज में सामाजिक जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए कुछ व्यवस्थाओं का संयोजन किया जाता है। "तुलसीदास" काव्य में विविध वर्णो के पतित-जीवन का जो चित्रण किया गया है, वह कवि तुलसीदास के समय में जैसा था, वैसा ही निरालाजी के युग में भी था। द्विजों के दुर्व्यवहारों के प्रहार झेलते-झेलते उनकी अवस्था पशुतुल्य हो गई है।[72] समाज में प्रत्येक व्यक्ति को न्याय दिलाने, प्रत्येक प्रकार के शोषण का अंत करने और सर्वत्र समता की स्थापना करने के लिए आपका काव्य एक महान सांस्कृतिक प्रयत्न है।

2·4·4 आध्यात्मिकता और दर्शन :-

निरालाजी के अनुसार संस्कृति में आध्यात्मिकता का महत्व है। निरालाजी के काव्य में आध्यात्मिक विचारों का एक अखंड प्राणपान स्त्रोत प्रवाहित है। स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी ब्रहमानंद, स्वामी प्रेमानंद आदि के विचारों का प्रभाव निरालाजी पर था। निरालाजी के आध्यात्मिक काव्य के दो स्तर हो सकते हैं। प्रथम अधिक दार्शनिक है दूसरा स्तर शुध्द भक्ति काव्य है। निरालाजी के काव्य में स्वामी विवेकानन्द जैसे वेदान्त के दर्शन होते हैं। जिसका फल निरालाजी के काव्य में दार्शनिकता दिखाई देती है।

ब्रह्म -

स्वामी विवेकानन्दजी की तरह निरालाजी भी ब्रह्म को सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान मानते हैं। समस्त ब्रह्माण्ड के मूल में विराजने वाली आदि शक्ति ही सर्वोपरि शक्ति है। एक भी व्यक्ति ब्रह्म से वंचित नहीं है।[73]

ब्रहम और आत्मा -

आत्मा ब्रहम का ही अंश है। आत्मा जब अपने प्रिय (ब्रह्म) से मिलने के लिए व्यग्र हो उठती है तो वह धारा के प्रबल वेग की तरह आगे बढती है। सभी बंधनों को तोडकर आगे जाती हैं और प्राणमुक्त होती है।[74] प्रार्थना करती हुए आत्मा उस प्रियतम ब्रहम के ध्यान में इतनी तन्मय हो जाती है कि, "सब में तुम हो और तुम में सब तन्मय है" कहती है।[75]

माया -

स्वामी विवेकानन्द की तरह निरालाजी भी भ्रम को ही माया मानते हैं। माया के कारण ही जीव परब्रहम से मिल नहीं पाता। अन्य संतों की तरह निरालाजी ने भी माया की मुक्त-कृण्ठ से भर्त्सना की है। माया के चंगुल से मुक्त होते ही जीव को आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है।[76] भ्रमित जीवों को ही माया अपने कर-पाश में आबध्द करके इस संसार का संचालन करती रहती है।[77] किन्तु जब जीव भ्रम का परित्याग करके ब्रहम शक्ति प्रदर्शन अथवा आत्म साक्षात्कार करके मन को ऊर्ध्वमुखी बना लेता है, तब यह माया बाधक न रहकर उसकी सहायिका बन जाती है।

संसार -

निरालाजी भी इस संसार को ब्रहम की इच्छा का ही परिणाम मानते हैं। "सच्चिदानन्द" की इस सुंदर सृष्टि में दु:ख-दैन्य, उत्पीडन, शोषण अन्याय को देखकर निरालाजी विक्षुब्ध हो उठते हैं। आप दीन के स्वर में स्वर मिलाकर आह भरते हैं।[78] निरालाजी जीवों को संसार के नश्वर वातावरण से दूर उस पार जाने का सन्देश देते हैं।[79]

2·4·5 मानवता :-

निरालाजी बंगाल के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक नवजागरण से प्रभावित थे। निरालाजी का मानवतावाद हिंदी साहित्य में आपके अभ्युदयकाल से आरम्भ होता है और अंतिम दौर तक निरन्तर गहरा होता जाता है। मानव-मानव

में साम्य प्रस्थापित करने के लिए सारा जीर्ण-शीर्ण प्राचीन, नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए आपने "बादल" का आवाहन किया था। दीन-दु:खियों के अत्यन्त करूण परन्तु यथार्थ चित्र साहित्य में आपने उतार हैं, जो मानव-मानव के छेद को स्पष्ट करते हैं। आपकी "भिक्षुक", "विधवा", "तोडती पत्थर" कविता "अप्सरा", "अलका", "निरूपमा", "लिला" के बाल जाल से अलग होकर "देवी" की पगली को अपनी वेदना देता है, "चतुरी चमार" को जगाता है, "सुकुल की बीबी" की सहायता करता है, "कुल्लीभाट" की महत्ता स्थापित करता है। इस प्रकार निरालाजी के काव्य और गद्य साहित्य में मानवता के चित्र सामने आते हैं। दु:ख और पराजय का ज्ञान, संघर्ष की कठिनाईयों और मार्ग के अवरोधों का चित्रण, मनुष्य के धैर्य और उसकी वीरता की अभिव्यंजना निरालाजी के मानवतावाद की विशेषताएँ हैं।

निरालाजी का स्वर संस्कृति-प्रशास्ति का केवल कल्पना-कोमल स्वर नहीं, नवीनता के निर्माण का वास्तव कठोर, ओजपूर्ण स्वर है। डॉ.रामरतन भटनागरजी के अनुसार निरालाजी सनातन भारतीय संस्कृति के ही कवि नहीं है, उन्होंने तो संपूर्ण भारतीय सांस्कृतिक विकास को वाणी दी है। निरालाजी भी प्रसादजी की भाँति भारतीय संस्कृति की समृध्दि के प्रशंसक है एवं उसी आधार पर नवयुग की भूमिपर राष्ट्र का नवनिर्माण चाहते हैं।

संदर्भ :-

1· सुनीति - दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना - पृ·3

2· महादेवी वर्मा - हिमालय की भूमिका

3· डॉ·शुभ लक्ष्मी - आधुनिक हिंदी काव्य में राष्ट्रीय चेतना - पृ·9

4· वही - पृ· 9

5· डॉ·कर्ण सिंह - भारतीय राष्ट्रीयता के अग्रदूत - पृ· 76

6· डॉ·शुभ लक्ष्मी - आधुनिक हिंदी काव्य में राष्ट्रीय चेतना - पृ· 10

7· डॉ·सुधाकर शंकर कलवडे - आधुनिक हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना पृ· 20

8· वही - पृ· 20

9· सुनीति - दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना - पृ· 4

10· डॉ·कर्ण सिंह - भारतीय राष्ट्रीयता के अग्रदूत - पृ· 83

11· सुनीति - दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना - पृ· 6

12· वही - पृ· 8

13· डॉ·सुधाकर शंकर कलवडे - आधुनिक हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना पृ· 37

14· सुनीति - दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना - पृ· 10

15· "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।"
डॉ·सुधाकर शंकर कलवडे - आधुनिक हिंदी कविता में राष्ट्रीय चेतना पृ· 40

16· "ॐ सहना ववतु, सहनो भुनवतु, सहवीर्य करवा वहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु माविदिषा वहै।"
वही - पृ· 41·

17· सुनीति - दिनकर के काव्य में राष्ट्रोय चेतना - पृ· 11

18· "अपि स्वर्णमयी लंका न में लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"
वही -पृ· 11

19· मरना जाना हक्क हैं, जुग्ग रहेगी गल्लां ।
सां पुरसां का जीवना थोड़ाई हैं भल्लां
संपादक - विपिन बिहारी त्रिवेदी - पृथ्वीराज रासो - पृ· 21

20· बारह बरस ले कूकर जिये और तेरह लौं जियें सियार,
बरिस अठराह क्षत्रिय जियें आगे जीवन को धिक्कार ।
रामचंद्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास - पृ· 54

21· जदपि सब बैकुण्ठ बखाना । वेद पुरान विदित जगुजाना।
अवध पुरी सम प्रिय नहीं सोऊ । यह प्रसंग जाने कोऊ कोऊ।।
संपादक - डॉ·देवेंद्र प्रताप - तुलसी संचयन - पृ· 98

22· वही महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिए ।
कोई हिन्दू कोई तुरूक कहा वे एक जमीं पर रहिये।।
सं·अयोध्यासिंह उपाध्याय - कबीर वचनावली - पृ· 208

23· जाति न पूछो साध की पूछ लीजिए ज्ञान ।
मोल करो तरवार का पडी रहन दो म्यान ।
वही - पृ· 122

24· डॉ·सुधाकर शंकर कलवडे - आधुनिक हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना
पृ· 53

25· राखी हिन्दुआनी हिन्दुआन को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी में।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राख्यों, राख्यों गुनी गुनी में।
आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - भूषण (ग्रंथावली) पृ· 209

26· रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई,
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई ।
भारतेंदु हरिश्चंद्र-प्रकाशन विभाग भारत सरकार - पृ· 96

27· अंगरेज राज सुख साज सजै सब भारी ।
पैधन विदेश चलि जात दूहैं अति ख्वारी ।
वही पृ· 80

28· हे धनियों ! क्या दीन, जनों की नहिं सुनते हो हाहाकार।
जिसका मरे पडोसी भूखा, उसके भोजन को धिक्कार।
डॉ·शुभलक्ष्मी - आधुनिक हिंदी काव्य में राष्ट्रीय चेतना - पृ· 39

29· "हम कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्यायें सभी।"
सुनीति - दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना - पृ· 54

30· डॉ·शुभ लक्ष्मी - आधुनिक हिंदी काव्य में राष्ट्रीय चेतना - पृ· 41

31· संपादक - पद्मसिंह कमलेश - निराला - पृ· 47

32· डॉ·रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य साधना - खंड 2 - पृ·149

33· डॉ·सरोज मार्कण्डेय - निराला साहित्य में युगीन समस्याएँ - पृ· 202

34· निराला - तुलसीदास - पृ· 16

35· निराला - परिमल - पृ· 133-34

36· निराला - नये पत्ते - पृ· 41

37· निराला - परिमल - पृ· 168

38· निराला - प्रबन्ध प्रतिमा - पृ· 90

39· निराला - परिमल - पृ· 229

40· वही - पृ· 228

41· निराला - परिमल - पृ· 187-88

42· डॉ·सरोज मार्कण्डेय - निराला साहित्य में युगीन समस्याएँ - पृ·310

43· निराला - अपरा - पृ· 29

44· निराला - अर्चना - पृ· 19

45· निराला - चयन - पृ· 18

46· गंगाप्रसाद पाण्डेय - महाप्राण निराला - पृ· 97

47· वही - पृ· 99

48· वही - पृ· 101

49· वही - पृ· 101

50· वही - पृ· 86

51· महेंद्रकुमार वर्मा - भारतीय संस्कृति के मूलाधार - पृ· 1

52· डॉ·गजानन सुर्वे - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों का सांस्कृतिक अध्ययन पृ· 11

53· महेंद्रकुमार वर्मा - भारतीय संस्कृति के मूलाधार - पृ· 1

54· वही - पृ· 2
55· जगदीश चंद्र - निराला काव्य में सांस्कृतिक चेतना - पृ· 11
56· डॉ·गजानन सुर्वे - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों का सांस्कृतिक अध्ययन,पृ·12
57· महेंद्रकुमार वर्मा - भारतीय संस्कृति के मूलाधार - पृ· 2
58· डॉ·गजानन सुर्वे - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों का सांस्कृतिक अध्ययन,पृ·12
59· महेंद्रकुमार वर्मा - भारतीय संस्कृति के मूलाधार - पृ· 153
60· वही - पृ· 156
61· डॉ·गजानन सुर्वे - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों का सांस्कृतिक अध्ययन,पृ·75
62· महेंद्रकुमार वर्मा - भारतीय संस्कृति के मूलाधार - पृ· 256
63· दूधनाथ सिंह - निराला आत्महन्ता आस्था - पृ· 177
64· निराला - अनामिका - पृ· 29
65· वही - पृ· 29
66· निराला - अनामिका - पृ· 59
67· निराला - तुलसीदास - पृ· 11
68· वही - पृ· 15
69· निराला - परिमल - पृ· 216
70· वही - पृ· 192
71· वही - पृ· 218
72· निराला - तुलसीदास - पृ· 25
73· निराला - परिमल - पृ· 234
74· वही - पृ· 136
75· वही - पृ· 67
76· वही - पृ· 190
77· वही - पृ· 106
78· वही - पृ· 134
79· वही - पृ· 99